

उत्तराखंड के पथ पर

—क्षितीश वेदालंकार

यमुनोत्तरी

जिसने कभी हिमालय का एक बार भी दर्शन कर लिया है वह उसके दिव्य आकर्षण से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। पहले से कोई विचार नहीं, कोई योजना और कार्यक्रम नहीं, अचानक हिमालय की पुकार से खिंचा मैं उत्तराखंड के चारों धामों की यात्रा पर चल पड़ा। गनीमत यही थी कि यह यात्रा एकाकी नहीं थी, छोटी बस में अन्य 26 यात्री साथ थे।

9 जून सन् 1983 को प्रातःकाल 5 बजे जब घर से निकले तो हल्की-हल्की बारिश के छीटों ने जैसे यात्रा के लिए मंगलाचरण का कार्य पूरा कर दिया। सभी यात्री नई आशा, नई उमंग और हिमालय की इस यात्रा के सिलसिले में होने वाले कष्टों को सहने की मानसिक तैयारी और जोश से भरे हुए थे।

दिल्ली से हरिद्वार तक का पथ इतना परिचित है कि उसके बारे में किसी को कुछ भी बताने की आवश्यकता नहीं। हरिद्वार में कुछ घंटे तक गंगा स्नान, भोजन और विश्राम के पश्चात् जब बस ऋषिकेश की ओर चली तब सूर्य प्रचण्ड प्रताप से पृथ्वी को सन्तप्त कर रहा था, इसलिए गंगा स्नान से शरीर में आई शीतलता थोड़ी ही देर में पसीने की धाराओं में बदल गई। हरिद्वार से ऋषिकेश तक का सारा मार्ग अब पहले की तरह सुनसान और वीरान नहीं रहा और जब से वीरभद्र में रूस के सहयोग से एन्टीबायोटिक्स औषधियों का विशाल कारखाना बना है, तब से तो बीच का काफी हिस्सा गुंजान हो गया है। आसपास के वन्य परिवेश और सघन वृक्षों की अधिकता से तुरन्त ही मन में ऐसा आभास होता है, जैसे महानगरों की भीड़भाड़ भरी दुनिया से निकल कर हम किसी और नए लोक की ओर बढ़ रहे हैं।

ऋषिकेश में ठहरना नहीं था, इसलिए सीधा नरेन्द्र नगर की ओर बढ़ चले। परन्तु ऋषिकेश में हैजे के टीके के प्रमाण पत्र देखने में और बस को आगे की यात्रा के लिए 'फिटनेस' का

सर्टिफिकेट देने में स्थानीय अफसरों को जो कार्यवाही कुछ मिनटों में भुगता देनी चाहिए थी, उसमें उन्होंने सहज ही कई घंटे लगा दिए। यही सोचकर रात को नरेन्द्र नगर में ठहरने का निश्चय किया था। ऋषिकेश से नरेन्द्र नगर तक का मार्ग पर्वतीय चढ़ाइयों की भूमिका का काम करता है, परन्तु मार्ग के दोनों ओर तरह-तरह के सघन वृक्षों से भरा जंगल उस चढ़ाई का आभास नहीं होने देता। जब शाम से पहले ही नरेन्द्र नगर पहुंच गए तब मन में आया कि आज यात्रा का पहला दिन है और सूर्यास्त में भी काफी देर है, तो क्यों न 45 किलोमीटर दूर चम्बा के पड़ाव तक मोर्चा मार लिया जाए।

आखिर सर्पाकार मार्ग पर निरन्तर ऊंचाई की ओर चढ़ती हमारी बस चम्बा के निकट पहुंची तो दृश्य को देखकर मन प्रफुल्लित हो उठा। खुली घाटी में लगभग साढ़े 6 हजार फुट की ऊंचाई पर पर्वत के स्कन्धप्रदेश पर विराजमान नयनाभिराम नगरी। शीतल बयार के झोंकों ने दिनभर गर्मी से तपती काया को नया सुख दिया और जब रात को ठहरने के लिए गढ़वाल विकास निगम मंडल के पर्वत शिखर पर विद्यमान यात्री विश्राम गृह में आधुनिक दृष्टि से उत्तम व्यवस्था हो गई, तो रही सही थकावट भी जाती रही। यह चम्बा हिमाचल वाले चम्बा से भिन्न है। दिल्ली से चलने के बाद गर्मी के स्थान पर प्रथम ठंड का परिचय मिला। बस में 285 किलोमीटर का लम्बा सफर करने से आई थकावट के बावजूद बहुत राहत की अनुभूति हुई। रात को रजाई ओढ़ने की आवश्यकता पड़ी।

सवेरे उठकर देखा तो पर्वत की उपत्यका में घना कोहरा छाया हुआ था। किसी मनचले यात्री ने टिप्पणी की कि हिमालय इतना बूढ़ा हो गया, अभी तक इसका हुक्का पीने का व्यसन नहीं छूटा। देखो न सवेरे ही सवेरे कैसा बीड़ी-सिगरेट का सा धुंआ बना यह कोहरा सारी घाटी में छाया हुआ है।

प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही बस टिहरी और धरासू के लिए रवाना हो गई। ये दोनों स्थान काफी नीचाई पर हैं इसलिए वहां गर्मी भी काफी है। वैसे टिहरी में गंगा पर जो 260 मीटर ऊंचा विशाल बांध बनने वाला है, उसके बाद इस प्रदेश का बहुत सारा हिस्सा जलमग्न हो जाएगा। टिहरी में ही भिलंगना और भागीदारी का संगम है। स्वामी राम तीर्थ ने टिहरी में रहकर काफी दिनों तक साधना की थी और दीपावली के दिन दोनों नदियों के संगम पर ही उन्होंने प्राण-विसर्जन किया था। टिहरी और धरासू को एक बगल में छोड़ता हुआ मार्ग ब्रह्म खाल, आगरा खाल होता हुआ बड़कोट की ओर चला गया है।

खाल का अर्थ है नाला। ब्रह्म खाल शब्द तो आध्यात्मिकता का सूचक माना जा सकता है, परन्तु 'आगरा खाल' नाम क्यों रखा गया? इधर से बहने वाली यमुना नदी आगे जाकर आगरा और ताजमहल के ऐतिहासिक वैभव की वाहिका बनती है। क्या यहां के निवासियों ने यमुना में मिलने वाले अपने उस 'खाल' (नाला) को चिरस्मरणीय बनाने के लिए उसके साथ आगरा नाम जोड़ दिया?

यमुनोत्तरी और टिहरी के बीच में बड़कोट सबसे बड़ा नगर कहा जा सकता है। यहां जीवनोपयोगी सामान की दुकानों से भरा बड़ा बाजार है परन्तु हमको तो और आगे जाना था। फिर भी दो पहर के भोजन के लिए बड़कोट में कुछ घंटे विश्राम अच्छा रहा।

बड़कोट से आगे 5 किलोमीटर पर स्याना चट्टी है और उसके आगे 5 किलोमीटर दूर हनुमान चट्टी है। हनुमान चट्टी से आगे बस नहीं जाती। कुछ साल पहले स्याना चट्टी से आगे बस नहीं जाती थी और उससे कुछ साल पहले बड़कोट से आगे नहीं जाती थी। स्याना चट्टी में नदी के किनारे अच्छा खुला मैदान है और वहां तम्बुओं वगैरह के लगाने की भी अच्छी व्यवस्था है। परन्तु अब सब यात्री हनुमान चट्टी जाकर ठहरते हैं। स्याना में कोई नहीं ठहरता। वहां से आगे यमुनोत्तरी तक केवल पैदल रास्ता है।

चम्बा से आगे 136 किलोमीटर पार करके जब हनुमान चट्टी पहुंचे तो शाम के 4 बज चुके थे। हल्की-हल्की बारिश हो रही थी, छोटी सी जगह में यात्रियों की जितनी भीड़ थी वह इस चट्टी के काबू के बाहर थी। लगभग 20 अन्य यात्री बसें वहां मौजूद थीं जिसका अर्थ यह हुआ कि उस दिन (10 जून को) लगभग 500 यात्री हनुमान चट्टी से यमुनोत्तरी जाने के लिए तैयार थे। बारिश, भीड़, कीचड़, कोलाहल, चाय की दुकानों पर कहीं पांव रखने की जगह नहीं। ऐसी हालत में रात को हनुमान चट्टी में ठहरने की बात नहीं सोची जा सकती थी। इसीलिए 8 किलोमीटर की चढ़ाई का मार्ग तय करके रात तक जानकी चट्टी पहुंचने का निश्चय किया।

हनुमान चट्टी में ही हनुमान गंगा और यमुना का संगम होता है। किसी दिन इस चट्टी का भी अन्य प्रयागों की तरह 'हनुमान प्रयाग' नाम पड़ जाए तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि जितने अन्य प्रयाग हैं उन सबमें दो नदियों का संगम होता है। हनुमान गंगा और टोंस ये दोनों नदियां लगभग 20 हजार फुट ऊंचे निकटस्थ बन्दर पूँछ पर्वत शिखर से निकलती हैं।

जिन को आगे कठिन पैदल यात्रा तय करने के लिए घोड़े और डांडी करनी थी, वह उन्होंने यहीं से कर लिए। हनुमान चट्टी से यमुनोत्तरी तक जाने और आने के लिए घोड़े प्रायः 120 रु. लेते हैं और डांडी लगभग 450 रु.। डांडी और घोड़े के अलावा वृद्धों, विकलांगों, और अशक्तों के लिए कंडी की भी व्यवस्था है, जिसमें यात्री को एक टोकरी में घुटने सिकोड़कर बैठना पड़ता है और कुली उस टोकरी को अपनी पीठ पर लादकर ले चलता है। उसका किराया भी लगभग घोड़े जितना ही रहता है। डांडी को 4 आदमी उठाते हैं, पुराने जमाने की आराम कुर्सी की तरह बनी इस डांडी में यात्री लेटे हुए सफर करता है। आदमियों की पीठ पर सफर करना, चाहे डांडी हो या कंडी हो बड़ा अजीब करुणाजनक दृश्य लगता है। परन्तु जिन लोगों की रोजी इसी चीज से चलती

है, उनकी दृष्टि से सोचने पर इसकी कुछ उपयोगिता भी समझ में आ सकती है। परन्तु स्पष्टतः यह पूंजीवादी समाज में गरीब जनता के शोषण का एक प्रकार ही है।

हाथ में छड़ी संभाले और कंधे पर हल्की लोई डाले जब हनुमान चट्टी से हनुमान गंगा का पुल पार करके आगे बढ़े, तब शुरु-शुरु में मन में जैसा उत्साह था उसके कारण पांव जल्दी-जल्दी पड़ते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों चढ़ाई बढ़ती गई, त्यों-त्यों पांवों की थकावट भी बढ़ती गई और 5 किलोमीटर दूर फूल चट्टी तक पहुंचते-पहुंचते जब सूर्यास्त होने को आया, तब मन में यह शंका होने लगी कि पता नहीं, अंधेरा होने से पहले जानकी चट्टी तक पहुंच पाएंगे या नहीं।

फूल चट्टी अच्छी खुली जगह है। वहां डाकखाना, संस्कृत विद्यालय और ठहरने के कुछ अन्य स्थान भी हैं। इन्हीं दिनों वहां नेशनल कैडेट कोर के लगभग 500 छात्र-छात्राओं का शिविर लगा हुआ था। छात्राओं में गुजरात की लड़कियों की संख्या काफी थी। पर्वतारोहण के प्रति गुजरात की छात्राओं में जो नया उत्साह और प्रेम पैदा हुआ है वह अन्य राज्यों के लिए भी अनुकरणीय है।

थकान से चूर जब रात को 8 बजे जानकी चट्टी पहुंचे तो अमावस्या का अंधेरा चारों तरफ से घिर आया था और ऊबड़-खाबड़ पथरीले पथ में यह जानना भी सम्भव नहीं था कि साथ के अन्य यात्री कहां ठहरे हैं। गढ़वाल विकास मंडल निगम के चौकीदार से प्रार्थना की कि वह हमको टार्च लेकर उस स्थान तक पहुंचाने का कष्ट करे जिस स्थान पर हमें अपने सहायात्रियों के ठहरने की आशा थी। आसानी से तैयार नहीं हुआ। जब उसे इनाम देने की बात कही गई तब वह तैयार हो गया। निःसन्देह उस अंधेरे में उसने यह सहायता न की होती तो न जाने हम कहां-कहां और कब तक भटकते रहते।

अन्ततः उस चौकीदार ने हमें उस स्थान पर पहुंचा दिया जहां हमारे कुछ साथी ठहरे हुए थे। वहां केवल 10 यात्री थे। उन्होंने

पहले आकर यह कमरा सुरक्षित करा लिया था। परन्तु सब साथी इसमें नहीं आ सकते थे इसलिए अन्य लोगों ने, जहां जिसके सींग समाए, अपनी व्यवस्था कर ली। रात को ठहरने की जगह तो मिल गई, परन्तु उस दिन जानकी चट्टी में यात्रियों की भारी भीड़ होने के कारण और रात को विलम्ब से पहुंचने के कारण ओढ़ने बिछाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं हो सकी। अगले दिन सूर्यग्रहण था और उस दिन भक्त तीर्थयात्री यमुनोत्तरी के कुण्ड में स्नान करने के लिए उत्सुक थे। इसीलिए ज्यादा भीड़ थी। 9 हजार फुट की ऊंचाई पर बिना किसी ओढ़ने बिछाने के सामान के रात बितानी पड़ जाए तो तन और मन पर कैसी गुजरती है, इसे केवल भुक्त-भोगी ही जान सकते हैं।

सारी रात उस कमरे के एक कोने में अपना तौलिया बिछाकर उस पर बैठे-बैठे बिताई। पत्नी भी मेरे साथ थी। उस रात ठंड के कारण उसके पांव में बार-बार अकड़न आती गई और उसको कराहते-कराहते वह असीम धैर्य के साथ सहती रही। मैं मन ही मन अपनी विवशता पर खीजता रहा। अन्त में अपना स्वेटर उतार कर उसने पांव पर लपेटा तब जाकर पांव में कुछ गर्मी आई और अकड़न दूर हुई।

प्रातःकाल 4 बजे से ही यात्रियों का कोलाहल प्रारम्भ हो गया। कल की कठिन चढ़ाई और ठंड से सिकुड़ते हुए इस रात्रि-जागरण ने यमुनोत्तरी के शिखर तक पैदल जाने का सारा उत्साह भंग कर दिया। अन्त में घोड़े करने पड़े।

जानकी चट्टी से यमुनोत्तरी तक बड़ी कठिन चढ़ाई है। यद्यपि दूरी के हिसाब से वह केवल 5 किलोमीटर ही है, पर चढ़ाई इतनी कठिन है कि बड़े-बड़े धैर्यशालियों का भी धैर्य छूट सकता है। तब लगा कि इस चढ़ाई के लिए घोड़े करने का निश्चय अच्छा ही था।

सारी चढ़ाई में मार्ग के नीचे तलहटी में यमुना की निर्मल धारा दिखाई देती रही। उसका चट्टानों से टकराना और दुग्ध

धवल जलधारा का अनेक स्थानों पर प्रपात के रूप में गिरना चित्त को आल्हादित करता था।

2 घंटे की कठिन यात्रा के बाद यमुनोत्तरी पहुंचे। यहां यमुना नदी सीधे ग्लेशियर से निकलती है। कुछ ही दूरी पर गरुड़ गंगा नाम से एक दूसरी धारा निकलती है। इन दोनों धाराओं के बीच में यमुनोत्तरी का मन्दिर है। मन्दिर देखने से काफी प्राचीन लगता है। मन्दिर के साथ ही सूर्य कुण्ड नाम से एक गरम पानी का चश्मा है जिसमें पानी इतना गरम होता है कि चावल और आलू उसमें आसानी से उबल जाते हैं। प्रायः यात्री लोग मुट्ठी चावल लेकर कपड़े की पोटली में बांधकर पानी में लटका देते हैं। थोड़ी देर बाद चावल पक जाता है। इसी को प्रसाद के रूप में यात्री घर ले जाते हैं। गरम चश्मे के नीचे ही बड़ा कुण्ड बना हुआ है जिसमें यात्री स्नान करते हैं। इतनी ऊंचाई पर, इतनी ठण्ड में गरम पानी का यह कुण्ड होना प्रकृति का अनोखा चमत्कार है। प्रकृति के ऐसे चमत्कारों के कारण तीर्थों की महिमा और बढ़ जाती है। अन्य सहयात्री जहां मन्दिर में पूजा और सूर्य कुण्ड में अपने पित्रों के तर्पण में लगे रहे, वहां मैं चारों ओर घूम-घूमकर प्रकृति के मनोहर दृश्यों को और प्रभु की अद्भुत लीला को निहारता रहा।

हल्की-हल्की बारिश प्रारम्भ हो गई थी। तभी घोड़े वाले ने आकर कहा कि बारिश बढ़ जाएगी तो रास्ता बहुत खराब हो जाएगा। घोड़े के फिसलने का भी भय हो सकता है। इसलिए यहां से जल्दी लौट जाने में ही कुशल है।

दिल्ली से हरिद्वार	201 कि.मी.
हरिद्वार से चम्बा	79 कि.मी.
चम्बा से हनुमान चट्टी	110 कि.मी.
हनुमान चट्टी से जानकी चट्टी	8 कि.मी.
जानकी चट्टी से यमुनोत्तरी	5 कि.मी.
यमुनोत्तरी की ऊंचाई	10800 फुट

गंगोत्तरी

पौराणिक अनुश्रुति है कि असित मुनि यमुनोत्तरी में ही कुटी बनाकर रहते थे और वे नित्य गंगा और यमुना दोनों में स्नान किया करते थे। जब वृद्धावस्था के कारण उनके लिए रोज गंगोत्तरी जाना कठिन हो गया, तो यमुनोत्तरी में ही उनके सामने के शिलाखंडों से गंगा का एक रमणीक स्रोत प्रकट हो गया।

सम्भवतः यह बात यमुना की बगल में ही अन्य ग्लेशियर से निकलने वाली गरुड़ गंगा के लिए कही गई हो। परन्तु इस अनुश्रुति से यह ध्वनि भी निकलती है कि यमुनोत्तरी से गंगोत्तरी जाने का कोई छोटा मार्ग भी रहा होगा, जिससे एक दिन में गंगोत्तरी पहुंचा जा सकता था। यों तो उत्तराखंड के ये चारों धाम परस्पर इतने समीप हैं कि यदि पक्षी की तरह उड़ान करके या वायुयान से जाना हो तो चारों धामों पर एक ही दिन में पहुंचा जा सकता है। परन्तु सामान्य मनुष्य के लिए न तो पक्षी बनना सम्भव है, और न ही वायुयान सुलभ है। इसलिए हाथ की चार अंगुलियों की तरह विद्यमान इन चारों धामों की यात्रा करने वाले को फिर-फिर लौटकर वापस आना होता है।

11 जून को सूर्य ग्रहण होने का उल्लेख कर चुका हूं। बाद में दिल्ली आने पर पता लगा कि उसी दिन उद्योगजगत् के एक सूर्य को भी ग्रहण लगा था। प्रसिद्ध उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिड़ला का उसी दिन स्वर्गवास हुआ था। जानकी चट्टी में बिड़ला बन्धुओं की ओर से यात्रियों के लिए कई लाख रुपया खर्च करके एक भव्य विश्रामागार बना है, जिसका 13 जून को उद्घाटन होना था। उसका नाम रखा गया है— “मंगल निकेतन”। उद्घाटन सम्बन्धी समारोह के लिए एक दिन पहले वहां कुलियों की पीठ पर जनरेटर पहुंच चुका था। जब हम यमुनोत्तरी के शिखर से उतरकर वापस हनुमान चट्टी आ रहे थे, तब देखा कि उस मंगल

निकेतन के लिए फूल पौधों के गमले भी दिल्ली से लाकर वहां पहुंचाए जा रहे थे। जिन्होंने 13 जून को उस "मंगल निकेतन" के उद्घाटन की योजना बनाई थी, उनको यह कल्पना भी नहीं रही होगी कि उद्योग जगत् के सूर्य-स्थानीय उस महापुरुष की स्मृति भी उस "मंगल निकेतन" के साथ इस तरह जुड़ जाएगी।

हनुमान चट्टी पहुंचने पर पता लगा कि उससे पहली रात को कुछ असामाजिक तत्वों ने हमारी बस की छत पर रखे सामान को आधी रात के अंधेरे में चुराने की कोशिश की थी, परन्तु बस के ड्राइवर और कण्डक्टर की अचानक आंख खुल जाने से वह चोरी बच गई।

रात को बड़कोट आकर ठहरे। यात्रियों की भीड़ के कारण वहां भी जगह की तंगी थी। एक होटल वाले से यह कह कर गए कि अभी 5 मिनट में आकर पक्का करते हैं! जब 5 मिनट बाद वहां पहुंचे तो पता लगा कि इसी बीच बम्बई से आया एक अन्य यात्री दल अपनी बुकिंग करा ले गया है। बड़कोट में जानकी चट्टी जैसी ठंड नहीं थी। इसलिए रात को ज्यादा गरम कपड़ों की भी आवश्यकता नहीं थी।

अगले दिन प्रातःकाल गंगोत्तरी जाने के लिए उत्तरकाशी रवाना हुए। उत्तरकाशी गढ़वाल का प्रमुख स्थान है और सर्दियों में चारों धामों के सन्त महात्मा तथा अन्य निवासी प्रायः यहीं आकर अपनी सर्दियां बिताते हैं। नाम से ही यह स्पष्ट है कि कभी यह विद्या का केन्द्र बनकर 'उत्तर की काशी' के रूप में विख्यात रहा होगा। उत्तरकाशी से आगे दोपहर के बाद जब चले तो मनेरी बांध होते हुए भटवाड़ी पहुंचे। भटवाड़ी से कुछ मीलों के फासले पर डोडीताल नामक एक सुन्दर सरोवर है। परन्तु वहां मार्ग की कठिनता के कारण तीर्थ यात्रियों के बजाय पर्वतारोहियों के दल ही कभी-कभी जाते हैं। उत्तराकाशी में ही नेहरू जी के नाम से एक 'माउन्टेनियरिंग क्लब' बना हुआ है, जिसमें युवकों को पर्वतारोहण का प्रशिक्षण दिया जाता है।

भटवाड़ी से झाला और झाला से लंका तक का रास्ता काफी संकरा और चढ़ाई वाला है। लगभग 8 हजार फुट की ऊंचाई पर विद्यमान हर्सिल अपने सेबों के बगीचों के लिए मशहूर है, परन्तु वे सेबों के बगीचे सड़क के आसपास न होने के कारण बस में सवार यात्रियों को कहीं दिखाई नहीं देते। उत्तरकाशी के बाद रास्ता लगातार भागीरथी के किनारे-किनारे चलता है। हर्सिल के बाद लंका तक पहुंचते-पहुंचते कई स्थानों पर सड़क के दोनों ओर हिम की विशाल चट्टानें भी नजर आती हैं जो पर्वत के शिखर से लेकर नीचे घाटी में ठेठ भागीरथी के किनारे तक पहुंच जाती हैं। लंका तक की चढ़ाई कठिन है। उस युग की याद करके, जब न बसें थी और न ही आवागमन के अन्य साधन, उन तीर्थ यात्रियों की हिम्मत की दाद देनी पड़ती है, जो ऐसी कठिन चढ़ाईयां पार करके गंगोत्तरी पहुंचा करते थे। चढ़ाई की कठिनता का आभास 'लंका' शब्द से भी हो जाता है। वैसे तो जैसे राम ने लंका पर चढ़ाई की थी, वैसे ही इस लंका की भी चढ़ाई की उक्त साहसिकता से तुलना की जा सकती है। परन्तु यह लंका शब्द गढ़वाली भाषा के "लांका" शब्द का विकृत रूप है, जिसका अर्थ है — 'आगे से कान पकड़े' फिर इस ओर कभी मुंह नहीं करेंगे।'

लंका में अच्छा खुला मैदान है। यात्रियों के ठहरने के लिए पर्याप्त व्यवस्था भी है। भोजन और चाय आदि के लिए दुकानें भी काफी हैं। जिन यात्रियों को और कहीं जगह नहीं मिल पाती उनको थोड़ा सा किराया देकर इन दुकानों पर भी रात्रि-विश्राम की जगह मिल जाती है। लंका में जिस तरह पानी के नलों और शौचालयों आदि की व्यवस्था है, उसका एक कारण यह है कि यह स्थान इस प्रदेश के सीमान्त पर विद्यमान अपनी सेना का आधार शिविर भी है। इधर नेलंग दर्रा पड़ता है जो भैरों घाटी से 12 मील दूर है। दर्रे के पार चीन अधिकृत तिब्बत का इलाका शुरू हो जाता है। दर्रे पर 24 घंटे चौकसी रखने के लिए हमारे जवान तैनात हैं।

लंका में भी रात को गढ़वाल विकास निगम की धर्मशाला में ही ठहरने की व्यवस्था हो गई। अतिरिक्त कम्बल मिल जाने से रात की ठंड से भी बचाव हो गया। सवेरे उठकर जब बीच के मैदान में नजर दौड़ाई तो देखा कि लगभग 30 बसों और इतनी ही जीप या कारें मैदान में खड़ी थीं, जिसका अर्थ यह था कि लगभग 1000 यात्री उस दिन लंका से गंगोत्तरी जाने के लिए तैयार थे। कुछ यात्री ऐसे भी थे जिन्होंने उत्तरकाशी से लंका तक की यात्रा पैदल ही की थी। ऐसे आस्थावान तीर्थ यात्रियों की संख्या अब यद्यपि कम हो गई है, परन्तु असली तीर्थ यात्री तो उन्हीं को कहना चाहिए जो अपना राशन और अपना छोटा सा बिस्तर अपने कंधे पर लादे, छड़ी के सहारे एक-एक कदम आगे बढ़ते हुए कई दिनों की यात्रा के बाद यहां पहुंचे थे।

13 जून को लंका से भैरों घाटी के लिए रवाना हुए। कहने के लिए रास्ता केवल तीन किलोमीटर का है, परन्तु आधा रास्ता कठिन उतार का है और आधा कठिन चढ़ाई का। जाते हुए जो उतार है, वहीं वापसी में चढ़ाई बन जाता है। इसलिए उतार कठिन है या चढ़ाई, यह बहस व्यर्थ है, क्योंकि दोनों ही कठिन हैं।

प्रातःकाल 6 बजे लंका से चलकर कठिन उतराई और कठिन चढ़ाई पार करके जब भैरों घाटी पहुंचते हैं तो मन काफी हल्का लगता है क्योंकि उसके बाद अब आगे गंगोत्तरी तक पैदल नहीं चलना पड़ेगा। भैरों घाटी से गंगोत्तरी केवल 7 किलोमीटर दूर है और बस जीप सुलभ है। जीप में बस से दुगुना किराया लगता है। परन्तु यात्रियों की मारा-मारी ऐसी कि बस या जीप किसी में भी स्थान मिलना दुर्लभ। बस की छत पर भी यात्री।

लगभग 10 बजे के आसपास जब गंगोत्तरी पहुंचे, तो प्रथम दृष्टि में मुझे स्थान और उसके परिवेश ने उतना आकर्षित नहीं किया जितना कि लंका या भैरों घाटी के परिवेश ने किया था। इस नीरसता

में यात्रियों की गहमा-गहमी भी एक कारण हो सकती है। परन्तु धीरे-धीरे आगे बढ़कर जब भागीरथी के पुल को पार करके नदी के दूसरी ओर जाने लगा तो जैसे गंगोत्तरी का आकर्षण भी बढ़ता गया। साथ के अन्य यात्री पुल के इसी ओर रह गए, क्योंकि उनको भागीरथी में स्नान करके और गंगोत्तरी के मन्दिर में पूजा करके पुण्य कमाना था। मैं सीधा स्वामी सुन्दरानन्द जी की तलाश में उनकी कुटिया की ओर बढ़ चला।

गंगोत्तरी में अधिकतर पंडे, पुरोहित, कुछ दुकानदार तथा साधु संन्यासी निवास करते हैं। यह एक लघु ग्राम है। कुछ साधु शीत ऋतु में भी यहीं निवास करते हैं। पंडा पुरोहित और दुकानदार

भागीरथी के इस पार रहते हैं और साधु-संन्यासी भागीरथी के उस पार। गंगोत्तरी का मन्दिर, जो अपने आकार-प्रकार और भव्यता सभी दृष्टियों से यमुनोत्तरी के मन्दिर से कई गुना बढ़कर है, यमुनोत्तरी के मन्दिर जितना प्राचीन प्रतीत नहीं होता। बाद में पूछताछ करने पर पता लगा कि 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा ने भागीरथी के इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। मेरे लिए सबसे अधिक कौतुहल की बात यह थी कि मन्दिर के अन्दर परकोटे के बीचों-बीच एक विशाल यज्ञकुण्ड बना हुआ है जिसके चारों तरफ सुन्दर फूलों के गमले रखकर उसकी शोभा को द्विगुणित कर दिया गया है। वैदिक काल में जो महत्व यज्ञकुण्ड और यज्ञशाला का था, पौराणिक काल में वही महत्व मूर्ति और मन्दिर में रूपान्तरित हो गया।

जब मैं स्वामी सुन्दरानन्द जी की कुटिया पर पहुंचा तो देखा कि वहां देहरादून के कलक्टर आए हुए थे। स्वामी जी मुझे देखकर ऐसे उछल पड़े जैसे न जाने कोई घनिष्ट सम्बन्धी कितने दिनों बाद आकर मिला हो। पुराना परिचय था। स्वामी सुन्दरानन्द जी के सम्बन्ध में यहां कुछ शब्द कहना आवश्यक है।

स्वामी जी 40 साल से गंगोत्तरी में निवास करते हैं। केरल निवासी स्वामी तपोवन जी के शिष्य हैं। स्वयं आन्ध्रप्रदेश के

निवासी हैं और उत्तराखंड सम्बन्धी ज्ञान के प्रामाणित जानकार हैं। वे अन्य साधुओं से सर्वथा भिन्न हैं। इसीलिए केवल धर्म और पुण्य का क्रय-विक्रय करने वाले साधु उनके तेज को सहन नहीं कर पाते। स्वामी सुन्दरानन्द ने उत्तराखंड के एक-एक इंच को न केवल अपने पांवों से नापा है, बल्कि अपने कैमरे से हिमालय के भूभाग के लगभग 10,000 चित्र खींचकर उन्होंने इसके सौन्दर्य को चिरस्थायी भी बना दिया है। हिमालय के पशु-पक्षी, फूल-पौधे, संत-महात्मा और विभिन्न हिम शिखरों से लेकर गंगा की दुर्गम घाटियों तक को जिस तरह उन्होंने कैमरे में बन्द किया है वह किसी वैज्ञानिक की साधना से कम नहीं है। यदि निकोलस रोरिक, जो हिमालय के आकर्षण से खिंचे हुए अपनी जन्म भूमि रूस को छोड़कर कुल्लू की मनोरम घाटी के 'नगर' नामक स्थान पर आकर बस गए थे, 'हिमालय के चित्रकार' कहे जा सकते हैं, तो स्वामी सुन्दरानन्द को 'हिमालय का छविकार' की उपाधि से विभूषित करना होगा। शायद एकमात्र स्वामी सुन्दरानन्द ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने गोमुख से बद्रीनाथ तक की भयंकर हिमानियों से भरे दुर्गम मार्ग से 14 बार यात्रा की है। गंगोत्तरी के वनों और समस्त परिवेश के प्रति, अपने दृष्टिकोण में सर्वथा वैज्ञानिकों की सी तर्कसंगतता होते हुए भी जैसी आस्था उनमें है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। गंगा के प्रति इसी अनुरक्ति और भक्ति को वे अपने गुरु का प्रसाद समझकर वरण किए हुए हैं और किसी भी सांसारिक प्रलोभन के कारण वे उसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

अगले दिन स्वामी जी के साथ पटांगण और गौरी कुण्ड की ओर चले। कहा जाता है कि पटांगण में पांडवों ने रुद्र गंगा के किनारे रुद्राभिषेक के नाम से महान यज्ञ किया था। इसी स्थान के निकट एक ऐसी गुफा है जिसमें 100 आदमी एक साथ ठहर सकते हैं। गुफा के एक कोने में एक प्रकृतिक झरोखा बना हुआ है उससे दिन में गुफा के अन्दर कहीं भी अंधेरा नहीं रह पाता। ऐसा लगता है जैसे उस झरोखे में कोई व्यक्ति गुफा को प्रकाशित

करने के लिए टार्च लिए खड़ा हो। चारों ओर चीड़, देवदार तथा अन्य प्रकार के वृक्षों का घना जंगल है। कुछ ऊंचाई पर भूर्जवन है जिसमें भोजपत्र के पेड़ हैं। परन्तु धीरे-धीरे हिमालय की लकड़ी के लोभी व्यापारी यहां भी पहुंच गए और चोरी छिपे वृक्षों को काटकर ले जाने की परम्परा ने वन की सघनता को कम कर दिया है।

कुछ दिन पहले इसी वन—प्रान्तर में 54 विदेशी साधुओं का एक शिविर लगा था। ये साधु, साधु का वेश न होने पर भी केवल एकान्त में और हिमालय के सुन्दर परिवेश में ध्यान लगाने के लिए ही यहां आए थे। गंगा के किनारे जैसी सुन्दर चट्टानें बनी हैं वे सचमुच ही ध्यान लगाने का आदर्श स्थान हो सकती हैं।

स्वामी जी की कुटिया से कुछ ही दूरी पर गौरी कुण्ड है जहां भागीरथी गंगा कई धाराओं में विभक्त होकर काफी ऊंचाई से गिरती है। धारा गिरने का स्थान एकदम ऐसा लगता है जैसे किसी विशाल गज का मस्तक हो और धारा ऐसे गिरती है जैसे उस गज की सूंड हो। गहरी घाटी में एक स्थान पर गंगा का पाट केवल एक फुट चौड़ा रह जाता है, उसको बिन्दु सरोवर की संज्ञा दी गई है। आश्चर्य होता है कि दोनों ओर ऊंची खड़ी चट्टानों के बीच में केवल एक फुट की चौड़ाई में गंगा की विशाल धारा कैसे समाहित हो गई। उसके पास ही एक शिला हू—बहू ऐसी है जैसे शिव समाधिस्थ हों। और उसके पास ही गंगा की आवर्तमयी धारा ने एक चट्टान को काटकर कमंडल के आकार का, दूसरी को डमरू के आकार का और तीसरी को शंख के आकार का बना दिया है। पौराणिकों ने ब्रह्मा के कमंडल से गंगा के निकलने की जो बात कही है वह असल में चट्टानों की वैसी आकृति के रूप में प्रकृति का एक चमत्कार मात्र है। ऐसे कमंडल, डमरू और शंख इन चट्टानों में गंगा की धारा ने न जाने कितनी जगह बनाए होंगे। गौरीकुण्ड के ऊपर एक चट्टान पर भारत का मानचित्र सा भी

अंकित दिखता है — जो किसी मनुष्य की कृति न होकर प्रकृति का ही चमत्कार है।

यमुनोत्तरी से उत्तरकाशी	130 कि.मी.
उत्तरकाशी से लंका	88 कि.मी.
(हरिद्वार से लंका)	259 कि.मी.
लंका से भैरों घाटी	3 कि.मी.
भैरों घाटी से गंगोत्तरी	8 कि.मी.
गंगोत्तरी की ऊंचाई	10205 फुट

केदारनाथ

14 जून को प्रातःकाल जब गंगोत्तरी से वापस आने लगे तब मन की दो इच्छाएं अपूर्ण रह गईं। एक थी गंगोत्तरी से गोमुख जाने की और दूसरी थी गंगोत्तरी में कुछ अधिक दिन रहने की। गंगोत्तरी से गोमुख 18 किलोमीटर दूर है और वास्तव में भागीरथी वहीं से सीधी ग्लेशियर से निकलती है, जिसको पौराणिक भाषा में गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरना कहा गया है। स्वामी सुन्दरानन्द जी का कहना है कि पहले गोमुख वाला ग्लेशियर गंगोत्तरी के निकटवर्ती गौरीकुण्ड के प्रपात तक था और वहीं से गंगा कमण्डलनुमा चट्टान के आकार के कारण ब्रह्मा के कमण्डल से निकलती कही जाती थी। पर अब वह ग्लेशियर पीछे खिसकता हुआ गोमुख तक पहुंच गया है। स्वामी जी का कहना है कि मैंने अपने जीवन में ही पिछले 40 सालों में गंगोत्तरी के ग्लेशियर को दो किलोमीटर पीछे सरकता देखा है।

सामान्यतया साधु-सन्त 'गंगोत्तरी' शब्द की यह व्याख्या करते हैं कि गंगा यहां स्वर्ग से उतरी इसलिए गंगोत्तरी। परन्तु असलियत यह है कि गंगा हिमालय के दक्षिण पार्श्व से निकलकर यहां से उत्तर की ओर बहनी प्रारम्भ होती है, इसलिए इस स्थान का नाम गंगोत्तरी पड़ा। इस शब्द का दूसरा अर्थ यह भी है कि इस स्थान पर गंगा से "उत्तर" अर्थात् बढ़कर कोई और देवता नहीं है।

लौटते हुए वही भैरों घाटी की चढ़ाई और उतराई, और फिर लंका, लंका से हरसिल और झाला। लंका से भैरों घाटी तक 3 किलोमीटर की जो कठिन चढ़ाई-उतराई पड़ती है, वह सम्भवतः आगामी वर्ष से यात्रियों को परेशान न करे, क्योंकि सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मोटर की पूरी सड़क तैयार है, केवल बीच में दो पहाड़ों को जोड़ने वाले एक पुल के बनने की

कसर है। उसके बन जाने पर बस सीधी गंगोत्तरी तक जा सकेगी।

मार्ग में गंगा की विविध भंगिमाएं देखने को मिलती हैं। कहीं-कहीं जलधारा के तीव्र वेग ने चट्टानों को रगड़ कर ऐसा चमका दिया है कि वे संगमरमर को भी मात करती हैं। जगह-जगह शंख, कमण्डल, डमरू तथा अन्य आकारों की बनी चट्टानें जलधारा के प्रबल आवर्तों के चमत्कार हैं।

उत्तरकाशी से कुछ पहले मनेरी नामक स्थान पर गंगा पर एक विशाल बांध बन रहा है। इस बांध पर अब तक 82 करोड़ रुपया खर्च हो चुका है। इसी वर्ष के दिसम्बर तक बांध के पूरा हो जाने की आशा है। यह बांध समुद्र तल से लगभग 6 हजार फुट की ऊंचाई पर बना है। यहां दो सुरंगें बनाई गई हैं, एक 9 किलोमीटर लम्बी और दूसरी डेढ़ किलोमीटर लम्बी। बड़ी सुरंग में गंगा के पानी को ऊंचाई से गिराकर बिजली बनाने की योजना है और छोटी सुरंग इसलिए है कि पानी के अन्दर जो रेत तथा अन्य उच्छेष हों, उन्हें अलग करके निकाला जा सके ताकि मशीनें खराब न हो पाएं। यह बांध भारत हैवी इलेक्ट्रिक्स के तत्वावधान में बन रहा है। रात को उत्तरकाशी में 'भेल' (भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि.) के गैस्ट हाउस में ही ठहरने की व्यवस्था हो गई।

अगले दिन फिर वापस धरासू, टिहरी, कीर्ति नगर और श्रीनगर होते हुए शाम को रुद्रप्रयाग पहुंचे। रुद्रप्रयाग में अलकनन्दा और मंदाकिनी का संगम है। अलकनन्दा बद्रीनाथ की ओर से आती है और मंदाकिनी केदारनाथ की ओर से। रुद्रप्रयाग के पास ही गोचर नामक स्थान है जो कुछ समतल सा है। अब से लगभग 45 साल पहले श्री चावला नाम के एक सज्जन ने हरिद्वार से बद्रीनाथ तक की हवाई सर्विस शुरू की थी। तब बस श्रीनगर से आगे नहीं जाती थी। गोचर में छोटा सा हवाई अड्डा बना था, जहां हवाई जहाज यात्रियों को उतारता था और वहां से यात्री 60 मील पैदल

चलकर बद्रीनाथ पहुंचते थे। अब तो ठेठ बद्रीनाथ तक बस जाती है। अब नेताओं के लिए हेलीकोप्टर सुलभ है। इसलिए हवाई सर्विस व्यर्थ है। जिस दिन हम केदारनाथ पहुंचे उससे दो दिन पहले उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री श्रीपति मिश्र हेलीकोप्टर से ही केदारनाथ पहुंचे थे। एक दिन पूर्व पर्यटन और पर्वत विकास मंत्री श्री चन्द्र मोहन सिंह नेगी भी होकर गए थे।

रुद्रप्रयाग में बस्ती और बाजार अच्छा है। केदारनाथ के यात्रियों को यहां से होकर ही जाना पड़ता है। रुद्रप्रयाग से 9 किलोमीटर दूर तिलवाड़ा, वहां से 10 किलोमीटर दूर अगस्त्य मुनि, वहां से 15 किलोमीटर दूर कुण्ड, वहां से 5 किलोमीटर दूर गुप्तकाशी, वहां से 11 किलोमीटर फाटा, वहां से 7 किलोमीटर दूर रामपुर और रामपुर से 5 किलोमीटर दूर सोनप्रयाग है। सारा रास्ता मंदाकिनी की किशोर लीलाओं से चमत्कृत है और धीरे-धीरे ऊंचाई की ओर जाता हुआ नयनाभिराम दृश्यावलि से गुजरता है। सोनप्रयाग में मन्दाकिनी और शोण गंगा का संगम है। यह शोण मन्दाकिनी की स्थानीय सहायक नदी मात्र है, इसका सम्बन्ध सोन नामक उस विशाल नदी के साथ नहीं है, जिसके तट पर बिहार में सोनपुर बसा है और जहां संसार का सबसे बड़ा रेलवे प्लेट फार्म है, क्योंकि वहां हर साल पशुओं का विशाल मेला लगता है, जिसमें छोटे से छोटे जानवर से लेकर हाथी तक बिकने आते हैं।

सोनप्रयाग से 5 किलोमीटर आगे गौरी कुण्ड है। यहां से आगे बस की गति नहीं है। केदारनाथ तक पैदल ही जाना पड़ता है। केदारनाथ गौरीकुण्ड से 13 किलोमीटर दूर है। यह गौरी कुण्ड गंगोत्तरी वाले गौरी कुण्ड से सर्वथा भिन्न है।

जब बस से उतरे तो दोपहर हो चुकी थी और हल्की-हल्की बारिश हो रही थी। इस ऊंचाई पर बारिश कितनी ही हल्की हो, पर ठंड तो बढ़ा ही देती है। गौरी कुण्ड में जगह थोड़ी है, बस्ती घनी है और बसों का अन्तिम पड़ाव होने के कारण सीजन में यात्रियों की भीड़ भी खूब हो जाती है। बारिश के समय कीचड़,

घिचपिच और तंग गलियां मन में अस्वस्ति का सा भाव भरती हैं। सह यात्रियों में जो हिम्मती थे, वे तो उसी समय बूँदा-बाँदी की बिना परवाह किए केदारनाथ के कठिन मार्ग पर चल पड़े। कुछ दुकानदारों ने कहा कि यह मेंह-पानी इस तरह जारी रहा तो आगे रास्ते में कठिनाई बढ़ जाएगी, जिन स्थानों पर बर्फ से गुजरना पड़ता है वहां फिसलन भी बढ़ जाएगी, इसलिए अच्छा यह है कि आज रात गौरी कुण्ड में ठहर कर अगले दिन सवेरे-सवेरे केदारनाथ की चढ़ाई की जाए। दुकानदारों का यह भी कहना था कि केदारनाथ के मार्ग पर प्रायः प्रतिदिन दोपहर के बाद ऐसे ही मौसम खराब हो जाता है। इसलिए अनावश्यक रूप से खतरा मोल लेने की आवश्यकता नहीं। बात बुद्धिमानों की थी, इसलिए रात को भारत सेवाश्रम की धर्मशाला में विश्राम किया। भारत सेवाश्रम वालों ने यात्रियों के लिए निःशुल्क चिकित्सालय और ऑक्सीजन की व्यवस्था भी कर रखी है, जिसकी कभी-कभी यात्रियों को इस कठिन यात्रा में आवश्यकता पड़ जाती है। यमुनोत्तरी की तरह गौरी कुण्ड में भी गरम पानी का चश्मा है। केदारनाथ जाने से पहले और वहां से लौटने के बाद इसमें स्नान करके थकावट मिटाने का एक अयाचित साधन यात्रियों को अनायास सुलभ हो जाता है।

17 जून को पौ फटने से पहले ही घोड़े वाले आ गए। रात को ही उनके ठेकेदारों से बात हो गई थी। सबेरे 5 बजे से ही सब घोड़े वालों ने अपनी-अपनी सवारियों को तलाश करना शुरू कर दिया। 5:30 बजते तक तो अधिकांश यात्री पैदल या घोड़ों पर केदारनाथ की ओर बढ़ चले। दूर तक घोड़ों की और यात्रियों की लम्बी लाइन को देखकर ऐसा लगता था जैसे कोई शोभा यात्रा निकल रही हो। इस शोभा यात्रा में शामिल यात्री स्वयं ही अपने दर्शक थे क्योंकि यात्रियों के सिवाय इस जुलूस को देखने वाला वहां और कोई नहीं था। पर्वत के एकान्त में, जंगल की हरियाली में और मन्दाकिनी के अल्हड़ नृत्यरत पद विन्यास के सान्निध्य में

गुजरती इस शोभा यात्रा में किसी सैनिक अभियान की नहीं, तीर्थ यात्रियों के श्रद्धा-अभियान की ही झलक अधिक थी।

गौरी कुण्ड से रामबाड़ा तक 7 किलोमीटर का रास्ता हल्की चढ़ाई वाला है। रामबाड़ा चट्टी केदारनाथ और गौरी कुण्ड के बीचोंबीच में विश्राम का और ठहरने का अच्छा स्थान है। पैदल यात्रा करने वाले प्रायः पहले ही दिन गौरी कुण्ड से रामबाड़ा आकर रात को ठहरते हैं और अगले दिन प्रातः रामबाड़ा से केदारनाथ के लिए चलते हैं। इससे आसानी हो जाती है।

रामबाड़ा के पश्चात् चढ़ाई कठिन से कठिनतर होती जाती है। एक के बाद एक हिमानियां आती जाती हैं। जिन्होंने पहले कभी कोई ग्लेशियर नहीं देखा, वे जब हिम के इतने बड़े संघात को पहली बार देखते हैं तो उनका रोमांचित होना स्वाभाविक है। रामबाड़ा और केदारनाथ के बीच में 5 स्थानों पर ग्लेशियरों की पीठ से यात्रियों को इसी रोमांचित अवस्था में गुजरना पड़ता है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते चले जाते हैं त्यों-त्यों मन्दाकिनी भी हिम श्वेत आवरण से अपना मुख कभी ढक लेती है और कभी आवरण हटाकर खिलखिल करके हंस पड़ती है। तब उसकी इस हिम-शुभ्र हंसी के सौन्दर्य का क्या कहना! जहां कहीं मन्दाकिनी की धारा प्रपात के रूप में ऊंचाई से गिरती है वहां वह पानी की नहीं, सीधी दूध की धारा ही लगती है। हिम के रूप में जो धवल दुग्ध सरोवर चारों तरफ जमे हुए हैं उनसे निकलने वाली धाराएं दूध की ही तो होंगी, पानी की कैसे हो सकती हैं।

एक किलोमीटर दूर से केदारनाथ के मन्दिर के जब पहली बार दर्शन होते हैं तो मन्दिर के शिखर के अलावा चारों तरफ पहाड़ों की चोटियों और घाटियों पर जमी बर्फ के बीच में वह विचित्र स्तूप सा खड़ा लगता है। केदारनाथ की सीमा में पांव रखते ही सबसे पहले सरकार की ओर से बना एक स्वागत कक्ष यात्रियों का स्वागत करता है। पर यह कैसा स्वागत कक्ष है जिसमें कोई स्वागत करने वाला नहीं, जिसकी कोई छत नहीं, जिसकी कोई

दीवार नहीं, केवल एक बोर्ड लगा है जो इस बात का संकेत देता है कि यहां कोई स्वागत कक्ष था। पर ग्लेशियर से बहकर आती प्रबल तुषार—धारा ने उस स्वागत कक्ष को कभी का भूमि सात् कर दिया है। इस स्वागत कक्ष जैसी ही स्थिति साधुओं की ऐसी दो तीन कुटियों की भी देखी। उन साधुओं ने बस्ती से दूर एकांत में अपनी साधना के लिए कुटियाएं बनाई होंगी। पर हिम के भयंकर दैत्य को अपने साम्राज्य में उन साधुओं की घुसपैठ नागवार लगी और उसने उनको भी ध्वस्त कर दिया।

बस्ती में प्रवेश करने से पहले मन्दाकिनी का पुल पार करना पड़ता है। इस पुल के नीचे ही मन्दाकिनी में स्नान करके पुण्य लाभ करने वालों के लिए छोटा सा घाट बना है। घाट के भी चारों तरफ बर्फ छाई है। पुण्य लोभी यात्री ठंड से सिकुड़ते हुए घाट की सीढ़ियां उतरकर मन्दाकिनी के हिम शीतल जल का लोटा भर के अपने तन पर डालते हैं। दो चार लोटे डालकर शरीर को किसी तरह गीला करते हैं, फिर जल्दी—जल्दी जोर से बदन को रगड़ते हैं और फिर तुरन्त एक दो लोटे और डालने के बाद हिम्मत जबाब दे जाती है तो ठिठुरते—ठिठुरते सीढ़ियां चढ़कर ऊपर सूरज की चमकती हुई धूप की शरण लेते हैं। पर हिम—जल के इस संक्षिप्त स्नान के बाद शरीर जैसे सर्दी—प्रूफ हो जाता है।

पुल के पार कुछ चढ़ाई पर बस्ती शुरू हो जाती है। कई जगह गलियों में अभी तक बर्फ पड़ी है। एक धर्मशाला का मुख्य द्वार तो अभी तक बीच में बर्फ का बड़ा तोड़ा पड़े रहने के कारण पूरी तरह खुल भी नहीं पाया। केदारनाथ के मन्दिर की बगल में भी एक बर्फ की चट्टान पड़ी देखी। चारों धामों में यह धाम सबसे ऊंचा है। जून के महीने में बर्फ की सघनता को देखकर सहज ही कल्पना की जा सकती है कि सर्दियों में यहां क्या हाल होता होगा। लोग बताते हैं कि सारा मन्दिर शिखर तक बर्फ से ढक जाता है और जब अप्रैल में मन्दिर के कपाट खुलने का अवसर

आता है तो सबसे पहले द्वार के बाहर पड़ी बर्फ को हटाना ही प्रमुख कार्य होता है।

केदारनाथ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है, इसलिए यह शैवों और शाक्तों का प्रिय तीर्थ है। मन्दिर में एक चट्टान को ही देवता मानकर उसकी पूजा की जाती है। कहा जाता है कि यहां भगवान शिव भैंस का रूप धारण करके आए थे। भीम अपनी गदा लेकर शिवजी के दर्शन करने के लिए रास्ता रोके खड़ा था जब अन्य भैंसों के साथ महिष रूप धारी शिव गुजरने लगे तभी आकाश वाणी हुई कि यह शिव हैं। भीम ने तुरन्त भैंसे को पकड़ लिया, परन्तु तब तक महिष का अगला हिस्सा आगे निकल चुका था। भीम के हाथ में केवल पिछला हिस्सा आया और वह उसी को पकड़कर बैठ गया। शिव का वह अगला हिस्सा नेपाल के पशुपति नाथ के मन्दिर में प्रतिष्ठित हुआ और केदारनाथ में महिष का पिछला हिस्सा। मन्दिर के बाहर जो नन्दी की मूर्ति बनी है वह भी आदिम कालीन एक ही अनघड़ चट्टान से निर्मित है और मन्दिर के अन्दर जो मूर्ति है वह भी विशुद्ध आदिम काली चट्टान के सिवाय और कुछ नहीं हैं। ऐसी असुन्दर अविकृत, अनघड़ चट्टान के साथ किसी और चीज की संगति नहीं लग सकती थी, केवल भैंसे के नितम्ब की संगति लग सकती थी, इसलिए वैसी कथा घड़ ली गई।

मन्दिर को पांडवों द्वारा निर्मित बतलाया जाता है, पर मन्दिर प्राचीन है इसमें सन्देह नहीं। किसी मन्दिर की प्राचीनता का बखान करने के लिए ही उसे पांडवों द्वारा या विश्वकर्मा द्वारा या अन्य किसी देवता के द्वारा निर्मित बता दिया जाता है।

उत्तराखण्ड के चारों धामों के मन्दिरों की तरह यह मन्दिर भी सरकारी नियंत्रण में है। विभिन्न प्रकार की पूजाओं की फीसें तय हैं और उन सबका बाकायदा हिसाब रखा जाता है। जगह-जगह लिखा हुआ है कि मन्दिर के किसी कर्मचारी को अपनी ओर से कोई पैसा न दें और मन्दिर में जो भी नकद राशि दान में दें

उसकी बाकायदा रसीद लें। महाभिषेक की पूजा की फीस 751/— रु. है और सामान्य रुद्राभिषेक की फीस 551/— रु. है। सबसे कम फीस 15/— रु. है, जिसमें केवल अपना या अपने किसी सगे सम्बन्धी का केवल नाम मात्र अंकित करवाया जा सकता है। जो जितनी ज्यादा फीस देता है उसको आरती और पूजा के समय उतना ही आगे बैठने का अवसर मिलता है। शेष भक्त यात्री पंक्तिबद्ध होकर बारी-बारी से दर्शन करने आते हैं।

केदारनाथ की मूर्ति पर प्रायः भक्त तीर्थ यात्री घी और मक्खन मलते हैं। और गंगोत्तरी से लाया हुआ गंगाजल चढ़ाते हैं। मूर्ति पर जो अन्य सामान चढ़ाया जाता है, कहते हैं कि बाद में उसकी नीलामी होती है और जिन दुकानों से पूजा की वह सारी सामग्री आती है वह फिर उन्हीं दुकानों पर वापस पहुंच जाती है। परन्तु भक्तों की भीड़ का यह हाल है कि सवेरे 4:30 बजे से लाइन लगनी शुरू हो जाती है। रात को 8 बजे की आरती में, जिसमें मूर्ति को कपड़े के बने रंग-बिरंगे फूलों से सजाया जाता है, दर्शनार्थियों की काफी भीड़ रहती है। ठंडी हवा में ठिठुरते हुए भी लोग कम्बल ओढ़े आरती देखने अवश्य पहुंचते हैं। बारह हजार फुट की ऊंचाई पर सामान्य प्राकृतिक पुष्प सुलभ नहीं हो सकते, इसलिए कपड़े के पुष्प अच्छे, जिनके मुरझाने का अन्देशा नहीं। रोज उन्हीं फूलों से श्रृंगार हो सकता है।

गंगोत्तरी से उत्तरकाशी	103 कि.मी.
उत्तरकाशी से रुद्रप्रयाग	155 कि.मी.
रुद्रप्रयाग से गौरीकुण्ड	70 कि.मी.
(हरिद्वार से गौरीकुण्ड)	235 कि.मी.
गौरीकुण्ड से केदारनाथ	13 कि.मी.
केदारनाथ की ऊंचाई	11800 फुट

बदरीनाथ की ओर

देवतात्मा हिमालय के सर्वोच्च शिखर माउंट एवरेस्ट पर मानव का विजय केतु फहराने के बावजूद अभी तक हिमालय के अनेक उच्च शिखर ऐसे हैं जिन्होंने मानव के विजयोन्मादी अहंकार को चुनौती देते हुए अभी तक अपनी अजेयता सुरक्षित रखी है। उन्हीं अजेय शिखरों में 25 हजार फुट की ऊंचाई वाला चौखम्भा शिखर भी है जो केदारनाथ की घाटी के सामने अपना गर्वोन्नत मस्तक ऊंचा किए खड़ा है। दो वर्ष पूर्व साहस के धनी जापानी पर्वतरोहियों ने इस शिखर पर आरोहण का प्रयत्न किया था, परन्तु हिमस्खलन में अपने 3 पर्वतारोहियों की बलि देकर अवसादग्रस्त मन से अभियान दल को निराश होकर लौटना पड़ा। जिद्दी स्वभाव के जापानियों ने अगले वर्ष चौखम्भा विजय के लिए पुनः अभियान किया, पर मस्तक पर चार सींग धारण करके अपने चौखम्भा नाम को सार्थक करने वाले इस पर्वतराज ने जापान के पर्वतारोहियों को पुनः निराश वापस लौटा दिया। उसके बाद अन्य किसी पर्वतारोही ने चौखम्भा की ओर नजर डालने की हिम्मत नहीं की।

इस चौखम्भा की अधित्यका में ही 14 हजार फुट की ऊंचाई पर वासुकि ताल और ब्रह्मकुण्ड विद्यमान हैं, परन्तु तीर्थ यात्री उनकी ओर झांकते नहीं। केदारनाथ तक पहुंचने में ही उनके साहस की समाप्ति हो जाती है। चारों तरफ हिम ही हिम और रात को दो-दो रजाईयां ओढ़ने पर भी ठंड से छुटकारा नहीं। ऐसी स्थिति में एक रात से अधिक ठहरने की हिम्मत भी विरले ही करते हैं। वहां बाजार अच्छा है, धर्मशालाएं काफी हैं, और मोदी तथा बिडला जैसे उद्योगपतियों द्वारा बनवाए गए पंचतारांकित होटलों को मात करने वाले विश्राम गृह भी मौजूद हैं। पर शिवजी जैसे दिगम्बर औघड़ बाबा के सान्निध्य में यात्रियों का मन उतना नहीं रमता, जितना पीताम्बरधारी विष्णु और नाना आभूषणों से अलंकृत लक्ष्मी के सान्निध्य में रमता है। बदरीनाथ में यात्री कई

दिन ठहरकर भी नहीं अघाते, पर केदारनाथ में एक दिन ठहरने के बाद ही अगले दिन वापस जाने की सोचते हैं।

केदारनाथ में ही आदि शंकराचार्य की समाधि का स्थान भी बना हुआ है। अब से कुछ वर्ष पूर्व, (सन् 1962 में) जब श्री विश्वनाथ दास उत्तरप्रदेश के राज्यपाल थे, तब उन्होंने इस संक्षिप्त सी समाधि के चारों ओर छोटी सी चार दीवारी बनवा दी थी। मन्दिर से यह समाधि मुश्किल से कोई एक फर्लांग दूर होगी, परन्तु बहुत थोड़े यात्रियों को ही उधर जाते देखा।

अगले दिन, 18 जून को प्रातःकाल केदारनाथ से पैदल ही वापस चले। यमुनोत्तरी की यात्रा में यह अनुभव कर लिया था कि चढ़ाई में घोड़े पर सफर करना जितना सुविधाजनक है, उतराई में वह उतना ही असुविधाजनक भी है। इसलिए बुद्धिमानी इसी बात में है कि हृदय में हिम्मत हो और टांगों में दम हो तो उतराई में कभी घोड़ा मत करो। मेरे साथ मेरी पत्नी भी थी। ऐसे अवसर पर उसमें पता नहीं कहाँ से हिम्मत आ जाती है। मेरे साथ कई कठिन यात्राओं में उसने अपनी इस छिपी हुई हिम्मत का परिचय दिया है। केदारनाथ से गौरी कुण्ड तक का 13 किलोमीटर का रास्ता हमने पैदल ही पार किया। रास्ते में 5 स्थानों पर ग्लेशियरों से गुजरने की बात पहले कह चुका हूँ। लौटते हुए देखा कि ग्लेशियरों पर, जहाँ से रास्ता गुजरता है वहाँ भी रात-रात में नई बर्फ जम गई है और मार्ग अवरुद्ध हो गया है। परन्तु मजदूर अपने बेलचे लिए उस बर्फ को काटकर सीढ़ियाँ सी बनाकर यात्रियों के लिए रास्ता बना रहे हैं। एक मजदूर से जब पूछा तो उसने कहा कि इस रास्ते पर रोज हमें यही काम करना पड़ता है। रात को नई बर्फ पड़ जाने से मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और प्रातःकाल ही हमें उसको साफ करके यात्रियों के सुरक्षित आवागमन की व्यवस्था करनी पड़ती है।

गौरी कुण्ड तक पहुँचते-पहुँचते 6 घंटे लग गए। दोपहर को गौरी कुण्ड में गरम पानी में स्नान करने के बाद थकावट भी

काफी मिट गई। इस कठिन यात्रा को पैदल पार कर लेने के कारण अन्य सहयात्रियों ने मेरी पत्नी की हिम्मत की दाद दी।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार बस तैयार थी। रात को रामपुर में ठहरने का प्रोग्राम था। केदारनाथ जाते हुए हम अपने बिस्तर तथा अन्य सामान रामपुर में ही छोड़ गए थे। रास्ते में सोन प्रयाग आया तो मन में एक और उचंग उठी। वहां से त्रियुगी नारायण 5 किलोमीटर दूर है। मन में आया कि अभी तो सूर्यास्त होने में काफी देर है और सब साथियों को रात को रामपुर में ठहरना ही है, तो क्यों न त्रियुगी नारायण का भी एक चक्कर लगा लिया जाए। ऋषि दयानन्द अपनी उत्तराखंड की यात्रा में त्रियुगी नारायण भी गए थे। इसलिए उस स्थान के दर्शन करने का मेरे लिए यह अतिरिक्त आकर्षण भी था। वहां बस नहीं जाती, केवल पैदल या घोड़े से ही जा सकते हैं। बारिश हो रही थी। अन्य सब साथियों ने इसे दुस्साहस कहा। पत्नी भी कहती रही कि अभी 13 किलोमीटर पैदल चलकर आए हो और थकान से चूर हो, फिर बारिश भी हो रही है, इसलिए त्रियुगी नारायण जाने का इरादा छोड़ दो। मन में सोचा, आगे पता नहीं कभी इधर आना होगा या नहीं, त्रियुगी नारायण को न देख पाने का पश्चात्ताप मन में सदा बना रहेगा। इसलिए जैसे भी हो, त्रियुगी नारायण जाना ही चाहिए। मेरे आग्रह को देखकर सहयात्रियों में से दो उत्साही युवक और निकल आए — श्री चन्द्रकिशोर और श्री वेदप्रकाश कपूर। हम तीनों उस बरसते पानी में ही, अपनी-अपनी बरसातियां ओढ़कर घोड़ों पर सवार हो गए और त्रियुगी नारायण की ओर चल पड़े।

सारा मार्ग वनों से और उद्यानों से सुशोभित था। वैसा सुन्दर मार्ग इस सारी यात्रा में अभी तक और कहीं देखने को नहीं मिला। उद्यान मानव निर्मित नहीं, बल्कि प्रकृति द्वारा स्वतः लगाए गए विचित्र आकृति और विचित्र रंगों के पेड़ों से लदे। कई वृक्षों के पत्ते ही दूर से फूलों का भ्रम पैदा करते थे।

साढ़े 10 हजार फुट की ऊंचाई पर विद्यमान त्रियुगी नारायण का मन्दिर वास्तुकला में और प्राचीनता में केदारनाथ के मन्दिर जैसा ही है। गंगोत्तरी से केदारनाथ जाने का यही प्राचीन अश्व मार्ग था। परन्तु बसों और आधुनिक वाहनों की सुलभता के युग में अब यह एक तरफ पड़ गया है, जहां भूला-भटका ही कोई यात्री पहुंच पाता है। मन्दिर के बाहर तीन कुण्ड हैं — ब्रह्म कुण्ड, रुद्र कुण्ड और सरस्वती कुण्ड। पहले कुण्ड में स्नान, दूसरे में मुखप्रक्षालन और तीसरे में केवल आचमन का विधान है। इस प्रक्रिया से जल की एक ही धारा से जुड़े इन तीनों कुण्डों का पानी स्वच्छ बना रहता है। सरस्वती कुण्ड के पास ही एक यज्ञमण्डप बना हुआ है, जहां शिव और पार्वती का विवाह हुआ बताया जाता है। उस समय विवाह वेदी पर जो अग्नि प्रदीप्त की गई थी, शिव और पार्वती के मंगलमय परिणय की प्रतीक वह अखण्ड धूनी सैकड़ों वर्षों से अभी तक ज्यों की त्यों चली आ रही है। यात्री उस धूनी की भस्म को ही अपने मस्तक पर लगाते हैं और प्रसाद के रूप में भस्म की पुड़िया ही अपने साथ ले जाते हैं। धूनी में हर एक यात्री अपनी ओर से एक लकड़ी चढ़ाता है। इसे बड़े पुण्य का काम माना जाता है। लकड़ियों का ढेर मन्दिर के अन्दर ही रखा रहता है और यात्रियों से पैसे लेकर उनके नाम की लकड़ी अखण्ड धूनी में समर्पित कर दी जाती है। मैं अपने मन में इसका समाधान इस प्रकार करता हूं कि इतनी ऊंचाई पर ठंड से बचने के लिए मन्दिर के पुजारियों ने यह अखण्ड धूनी की व्यवस्था की है, जिससे सर्दियों में भी, जब चारों तरफ हिम का साम्राज्य हो, तो मन्दिर के अन्दर उन्हें ठंड से बचने का सहज साधन सुलभ रहे।

आश्चर्य की बात यह है कि इस स्थान पर विवाह हुआ शिव और पार्वती का, पर मन्दिर है विष्णु और लक्ष्मी का। विष्णु यहां वामनावतार के रूप में हैं। पुजारी का कहना था कि विष्णु ने इसी स्थान पर वामन रूप ग्रहण करके अपने तीन कदमों में तीनों

लोकों को नाप लिया था। शिव और पार्वती के विवाह के पवित्र स्थान पर शिव और पार्वती की प्रतिमा न होकर यहां विष्णु और लक्ष्मी की प्रतिमा होने का अभिप्राय भी मेरी दृष्टि में यही है— कि जिस युग में शैव और वैष्णवों ने आपसी द्वेष और कलह को भुलाकर राष्ट्रहित की दृष्टि से समझौते का प्रयत्न किया, तब उन्होंने आपस में मन्दिरों का भी बंटवारा कर लिया और कहीं शिव और कहीं विष्णु की आराधना को मान्यता देकर अपने राष्ट्र धर्म की व्यापकता को एक नया आयाम दिया।

बारिश अभी रुकी नहीं थी और धीरे-धीरे सूर्य भगवान अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे। बादलों के कारण अंधेरा—सा छाया हुआ था। हमको आठ किलोमीटर का सफर तय करके रामपुर पहुंचना भी था। इसलिए पुनः हम तीनों यात्री अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर यही सन्तोष मन में लेकर लौट चले कि आखिर त्रियुगी नारायण देख ही लिया। मेरे दोनो साथियों ने त्रियुगी नारायण आने के मेरे आग्रह के लिए, जिसे मेरी पत्नी सहित अन्य सभी यात्री दुराग्रह ही समझ रहे थे, धन्यवाद दिया।

रात को 8 बजे के बाद ही हम रामपुर पहुंच पाए। अन्य सब साथी हमारी प्रतीक्षा में चिन्तातुर थे और अपने भोजन आदि के आवश्यक कार्यों से निपटने में तल्लीन थे। भारी थकावट के कारण रात को खूब गहरी नींद आई।

अगले दिन प्रातःकाल रामपुर से चले। वहीं से एक रास्ता उखीमठ और पीपलकोटी होते हुए जोशीमठ जाता है। परन्तु वह रास्ता बसों के लिए सुरक्षित नहीं है। ऋषि दयानन्द त्रियुगी नारायण के पश्चात् काफी कठिनाइयों को और कंटीली झाड़ियों को पार करते हुए उखीमठ पहुंचे थे और वहां कई दिन रहे भी थे। उखीमठ के महन्त ने ही अपने मठ के अतुल ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए उस कौपीनधारी, अखण्ड ब्रह्मचारी, निर्मोही, अवधूत दयानन्द को अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाने का प्रलोभन दिया था। पर जिस अध्यात्म—पिपासु को घर का ऐश्वर्य और माता—पिता

का मोह घर की चार दीवारी में नहीं रख सका, उसे उखीमठ कैसे रोक सकता था? सबका साथ छोड़कर मैं उखीमठ नहीं जा सका। इसका खेद है।

गुप्त काशी और अगस्त्य मुनि होते हुए पुनः रुद्र प्रयाग पहुंच गए। इस बार, बस्ती से दो किलोमीटर दूर अलकनन्दा और मन्दाकिनी के संगम पर स्नान करने का अवसर मिला। संगम की ओर जाते हुए जो पुल रास्ते में पड़ता है, वह नदी तल से बहुत ऊंचाई पर है। परन्तु सन् 72 की अलकनन्दा की भयंकर बाढ़ में वह पुल भी बह गया था। उसके स्थान पर यह नया पुल बना है। केदारनाथ से लौटते हुए अब तक मन्दाकिनी के किनारे-किनारे चलते आए थे। अब आगे अलकनन्दा के किनारे-किनारे कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग, चमोली और पीपलकोटी होते हुए शाम को जोशीमठ पहुंच गए। जोशीमठ बदरीनाथ का द्वार है।

अब से 45 वर्ष पूर्व कैलाश और मानसरोवर की यात्रा से लौटते हुए जिस जोशीमठ का दर्शन किया था, आज का जोशीमठ उससे बहुत बदल गया है। आधुनिक जीवन की अब वहां सब सुविधाएं उपलब्ध हैं। उत्तराखंड के चारों धामों में सबसे अधिक यात्री बदरीनाथ ही जाते हैं क्योंकि उसमें पैदल चलने की नौबत बिल्कुल नहीं आती। इसलिए जोशीमठ में यात्रियों की भीड़ भी खूब रहती है। अन्य तीनों धामों में बिना पैदल चले गुजारा नहीं। रात को जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी के आश्रम में निवास का अवसर मिला। यहां खूब बड़ा सभागार और सीमेन्ट के पक्के कई कमरे यात्रियों के ठहरने के लिए बने हैं। सभागार में ध्वनि विस्तारक यंत्र पर प्रायः कोई प्रवचन, या गीता और तुलसी रामायण का पाठ चलता रहता है जिसकी आवाज आश्रम के बाहर नीचे बाजार तक आसानी से पहुंचती है। स्वामी स्वरूपानन्द जी वहां नहीं थे। पूछने पर पता लगा कि वे मध्यप्रदेश के दौरे पर गए हुए हैं। ब्रह्मचारी कैवल्यानन्द मिले। वे पत्रकार के रूप में मेरे नाम से परिचित थे। जब मैंने ज्योर्तिमठ के प्राचीन प्रसिद्ध आश्रम

के सम्बन्ध में उनसे पूछताछ की, तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि आप तो पत्रकार हैं, सब कुछ जानते ही हैं, इसलिए मैं आपको और क्या बताऊँ। इस आश्रम में आदि शंकराचार्य के प्रथम शिष्य त्रोटकाचार्य की गुफा को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है और प्रत्येक यात्री से वहाँ ध्यानावस्थित होकर 10 मिनट तक मौन होकर बैठने को कहा जाता है। परन्तु सीमेंट का फर्श इतना ठंडा है कि कोई यात्री उस ठंडे फर्श पर आंख बन्द करके 10 मिनट तक बैठने की हिम्मत नहीं करता होगा। कहते हैं, इसी गुफा में त्रोटकाचार्य ने तपस्या की थी और इसी गुफा की खोज करके स्वामी स्वरूपानन्द जी ने अपनी शंकराचार्य की गद्दी को सार्थक किया है। यों आश्रम के कार्यालय में मेज—कुर्सी, सोफासेट आदि आधुनिक युग के सब साधन मौजूद हैं।

मैं 45 वर्ष पूर्व देखे ज्योर्तिमठ के आश्रम का इस आश्रम के साथ कहीं मेल नहीं पा रहा था। आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित वह सैंकड़ों साल पुराना ऐतिहासिक आश्रम कहां गया? उसका कोई भी अवशेष तो कहीं दिखाई नहीं देता। मन भटकता गया, साथ ही पांव भी भटकते गए। और यात्री जहां अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में लग गए, वहां मैं उस पुराने ज्योर्तिमठ के आरम्भ को तलाश करने में लगा रहा। आखिर कुछ ही ऊंचाई पर एक और रास्ता दिखाई दिया। थोड़ी दूर चलने के बाद ही वहां भी एक आश्रम की रूपरेखा सी उभरने लगी। जब और आगे बढ़ता गया तो देखा कि चारों तरफ फूलों की सुन्दर वाटिका है। बीच में यज्ञशाला बनी हुई है। यज्ञशाला के एक ओर वाटिकाओं के बीच में से जो रास्ता गुजरता है उसके दोनों ओर खम्बों पर कुछ वेद मंत्रों के छोटे—छोटे टुकड़े पट्टिकाओं पर अंकित हैं। रास्ते के दोनों ओर रंग—बिरंगी झंडियां भी लगीं हुई हैं। और आगे बढ़ने पर लकड़ी से बना एक दुमंजिला वृहत् आकार का आश्रम दिखा जिसके अध्यक्ष श्री स्वामी विष्णु देवानन्द हैं। पहुंचा तो आरती हो रही थी। पूछताछ करने पर पता लगा कि प्राचीन आश्रम यही है

और स्वामी स्वरूपानन्द जी वाला आश्रम तो सन् 1975 में ही बना है। आश्रम की प्रत्येक चीज में प्राचीनता की झलक थी। परन्तु मेरे मन में जो प्राचीन नक्शा जमा हुआ था, उसके साथ भी इस का पूरी तरह मेल बैठ नहीं पाता था। अन्त में एक पेड़ की उपस्थिति ने फैसला कर दिया। उस पेड़ को कल्पवृक्ष नाम दिया जाता है। सघन छायादार इस कल्पवृक्ष ने ही अपनी उपस्थिति से यह सिद्ध कर दिया कि आदि शंकराचार्य का स्थापित किया हुआ प्राचीन आश्रम यही है और यहीं सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य और हस्तामलकाचार्य तथा त्रोटकाचार्य—इन प्रथम चार शिष्यों ने तपस्या की थी। शंकराचार्य की साधना का भी एक अलग स्थान बना हुआ है। मैं जब पहुंचा, उस कुटिया में ताला लगा हुआ था और अन्दर अंधेरा था। पर मेरे मन की दुविधा मिट गई थी।

जिस तरह आजकल हर एक चीज में द्वैत चल रहा है, इसी तरह का द्वैत शंकराचार्यों में भी चल रहा है। स्वामी स्वरूपानन्द और स्वामी विष्णु देवानन्द दोनों का कहना है कि जगद्गुरु शंकराचार्य जी की गद्दी के असली उत्तराधिकारी हम ही हैं। उच्च न्यायालयों में उनके आपस में मुकदमे भी चल रहे हैं। मध्यप्रदेश के एक उच्च न्यायालय ने कुछ फैसला भी दिया है। दोनों शंकराचार्य उस फैसले को अपने पक्ष में बताते हैं। परन्तु फैसला तो किसी एक के ही पक्ष में होगा, दोनों के पक्ष में नहीं। अब शायद यह मामला उच्च न्यायालयों से हट कर उच्चतम न्यायालय तक जाने की तैयारी में है। परन्तु एक बात स्पष्ट है। स्वामी स्वरूपानन्द लोक व्यावहार में कुशल हैं। वे बड़े-बड़े शहरों में और हिन्दू धर्म सम्बन्धी सभा-समारोहों में प्रायः जनता के सामने आते रहते हैं। दूसरी ओर स्वामी विष्णु देवानन्द हैं, जो कहीं बाहर नहीं जाते। सभा-समारोहों में जनता के सामने जाने में वे अपने गौरव की हानि समझते हैं, उसे बाह्य आडम्बर की संज्ञा देते हैं और एकान्त में अपनी साधना में लीन रहने में ही अपने पद की सार्थकता मानते हैं। इसलिए आम जनता में जगद्गुरु शंकराचार्य

के रूप में श्री स्वामी स्वरूपानन्द जितने पूजित और प्रचलित हैं उतने स्वामी विष्णु देवानन्द नहीं। किसी दिन स्वामी स्वरूपानन्द ही जगद्गुरु शंकराचार्य के रूप में सर्वत्र मान्यता प्राप्त कर लें और स्वामी विष्णु देवानन्द इस प्रतियोगिता में सर्वथा अमान्य हो जाएँ, तो आश्चर्य नहीं। जिस दिन ऐसा होगा वह असल के बजाए नकल की विजय का दुर्भाग्यपूर्ण क्षण होगा।

20 जून को प्रातःकाल जोशीमठ से चलकर 48 किलोमीटर दूर बदरीनाथ सवेरे 8 बजे ही पहुंच गए।

केदारनाथ से रुद्रप्रयाग	80 कि.मी.
रुद्रप्रयाग से जोशीमठ	76 कि.मी.
जोशीमठ से बदरीनाथ	48 कि.मी.
(हरिद्वार से बदरीनाथ)	324 कि.मी.
बदरीनाथ की ऊंचाई	10244 फुट

बदरीनाथ और वसुधारा

बदरीनाथ पहुंचने की जल्दी में मैं पाठकों को फूलों की घाटी के बारे में नहीं बता सका। जोशीमठ से 20 किलोमीटर दूर विष्णु प्रयाग के पास ही गोविन्द घाट है, जहां से फूलों की घाटी और हेमकुण्ड के लिए रास्ता जाता है। पहले जब मैं बदरीनाथ आया था तब विष्णु प्रयाग तो था, पर गोविन्द घाट नहीं था।

फूलों की घाटी के लिए अलकनन्दा के पुल को पार करके लक्ष्मण गंगा के किनारे ही किनारे पैदल रास्ता जाता है। गोविन्द घाट में घोड़े भी मिल जाते हैं। यह काकभुशुंड की घाटी कहलाती है। भ्यूंडर से होते हुए लगभग 14 किलोमीटर के पश्चात् घंघरिया नामक स्थान आता है जो देवदार के विशाल वृक्षों से घिरी एक सुन्दर बस्ती है। यहीं से फूलों की घाटी प्रारम्भ हो जाती जो 10 हजार फुट से 12 हजार फुट की ऊंचाई तक 4 किलोमीटर की लम्बाई तक फैली है। उसी को देखने के लिए संसार के दूरस्थ स्थानों से भी प्रकृति प्रेमी यात्री आते रहते हैं। अगस्त मास में रंग-बिरंगे फूलों का जैसा सुन्दर बाग यहां प्रकृति अपने हाथों से सजाती है, उसे देव-दुर्लभ दृश्य कहा जा सकता है। सबसे बड़ी विशेषता ब्रह्म कमल की है, जो अपने आकार और सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है, और अन्यत्र दुर्लभ है। ब्रह्म कमल को ही द्रौपदी ने अलकनन्दा में बहता हुआ देखा था। इतना बड़ा फूल देखकर उसको कौन नहीं पाना चाहेगा? द्रौपदी की इच्छा पूर्ति के लिए ही, महाभारत की कथा के अनुसार, भीम ब्रह्म कमल को खोजते-खोजते इस स्थान पर पहुंचे। दुर्भाग्य की बात यह है कि इस युग में फूलों की इस घाटी का परिचय हमको यूरोप के उत्साही पर्यटकों द्वारा ही प्राप्त हो सका। एक अंग्रेज महिला की तो फूलों की घाटी में ही समाधि भी बनी हुई है। जानकार लोगों का कहना है कि ऐसी फूलों की घाटियां, जिन्हें गढ़वाली भाषा में

‘बुग्याल’ कहते हैं, गढ़वाल में 50 से भी अधिक हैं। परन्तु वे जनता की आंखों से ओझल हैं।

फूलों की घाटी से ही 5 किलोमीटर की कठिन चढ़ाई के पश्चात् 14 हजार फुट की ऊंचाई पर हेमकुण्ड नामक सुन्दर सरोवर है जो अब सिखों का प्रसिद्ध तीर्थ बन गया है। पौराणिक आख्यान के अनुसार यहां कभी लक्ष्मण यति ने तपस्या की थी जिसका संकेत लक्ष्मण गंगा के नाम से भी मिलता है। गुरु गोविन्द सिंह ने “विचित्र नाटक” नामक अपनी आत्मकथा में, जो दशम ग्रन्थ का एक अंश है, एक स्थान पर उल्लेख किया है कि उन्होंने अपने पूर्व जन्म में हिम-मंडित सात शिखरों से घिरे एक सरोवर के तट पर उपासना की थी। सन् 1930 में हवलदार सोहन सिंह हेमकुण्ड में आए। उन्होंने ही कहा— ‘विचित्र नाटक’ में वर्णित सरोवर यही है और गुरु गोविन्द सिंह ने यहीं तपस्या की थी। उनके सहधर्मी इस बात को ले उड़े और उसके बाद इस तीर्थ के विकास के लिए और यहां गुरुद्वारा बनाने के लिए उन्होंने अपने पुरुषार्थ और धन का ढेर लगा दिया। सिखों में इस तीर्थ को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रतिवर्ष हेमकुण्ड के यात्रा-दलों का आयोजन भी किया जाता है।

इस वर्ष से फूलों की घाटी आम जनता के लिए बन्द कर दी गई है, क्योंकि सीमान्त के इस नाजुक प्रदेश में विदेशों से आने वाले पर्यटकों की संख्या बहुत बढ़ गई थी और भीड़-भड़क्के के कारण यह फूलों की घाटी श्री-हीन होने लगी थी। अब वहां जाने के लिए सेना की अनुमति आवश्यक है।

कभी रामायण की संस्कृति ने समस्त गढ़वाल पर, जिसका पुराना नाम ब्रह्मपुरा है, अधिकार जमाना चाहा था। रामपुर, रामबाड़ा, राम-गंगा, राममन्दिर, रामनगर, लक्ष्मण झूला, अगस्त्य मुनि आदि नाम इसके प्रमाण हैं। फिर आया महाभारत का काल। तब इस प्रदेश में भीमगोड़ा, द्रोणभूमि (देहरादून), व्यास गुफा, भीम पुल, पाण्डुकेश्वर, कर्णप्रयाग, उखीमठ और पांडवों का स्वर्गारोहण

पथ — इसी प्रदेश में आ गए। उसके पश्चात् शिवपुराण का युग आया तो समस्त केदारखण्ड में शिव का आधिपत्य हो गया। उसके बाद बौद्ध युग आया तो गुप्त काशी, नाला चट्टी, बैथवा चट्टी के चारों ओर बौद्ध विहार और स्तूपों की झलक दिखाई देने लगी। फिर धीरे-धीरे शक्ति के उपासक शाक्तों और तान्त्रिकों का भी हिमालय के इस भूखण्ड में पदार्पण हुआ। सबसे अन्त में अब यहां हेमकुण्ड के रूप में सिखों ने अपना पांव जमा दिया है। एक ही सुखद बात है कि इस प्रदेश में पौराणिक, मान्त्रिक, तांत्रिक, शाक्त, शैव, बौद्ध, रामभक्त और कृष्णभक्त सबका विस्मयकारी समन्वय है।

पाण्डुकेश्वर के पश्चात् हनुमान चट्टी आती है और वहां से बर्फ का सिलसिला शुरू हो जाता है, जो बदरीनाथ पहुंचकर ही पीछा छोड़ता है। बदरीनाथ का पवित्र तीर्थ अलकनन्दा और ऋषिगंगा के संगम पर स्थित है और इसके दोनों ओर नर नारायण की पर्वत श्रेणियां हैं। सबसे पहले 22 हजार फुट ऊंचा हिमाच्छादित नीलकण्ठ का शिखर दूर से ही आकर्षित करता है। इस पर्वत शिखर का नाम नीलकण्ठ किसने रखा यह तो पता नहीं, परन्तु शिखर को देखते ही इस नाम की सार्थकता का आभास हो जाता है। क्योंकि शिखर चारों ओर से हिम के श्वेत मुकुट से मंडित है, परन्तु पर्वत का ग्रीवा-भाग शिखर के एक ओर झुका होने के कारण, सर्वथा हिम-शून्य है और जब प्रातः और सायं यह शिखर सूर्य की किरणों से स्वर्णिम आभा धारण करता है तब हिम-शून्य वह भाग सर्वथा दीप्तिहीन, नील-कृष्ण वर्ण का होने के कारण इस नीलकण्ठ नाम को सार्थक करता है।

बदरीनाथ मन्दिर के ठीक सामने ही अलकनन्दा के किनारे तप्त कुण्ड है जिसके गरम पानी में स्नान करने का बड़ा आनन्द है, अन्यथा इस ऊंचाई पर अलकनन्दा में स्नान करना भी यात्रियों के साहस की परीक्षा ही सिद्ध होता। एक और चमत्कार यह भी है कि तप्त कुण्ड से कुछ ही दूरी पर एक प्रह्लाद धारा है जिसका

पानी सम शीतोष्ण है। जब सर्दियों में चारों तरफ हिम के सिवाय और कुछ नहीं दिखाई देता, मन्दिर के कपाट बन्द हो जाते हैं और रावल जी तथा अन्य सब पंडे—पुजारी बदरीनाथ को छोड़कर जोशीमठ या उत्तरकाशी चले जाते हैं, तब भी तप्त कुण्ड का पानी ऐसे ही गरम रहता है और प्रह्लाद धारा का पानी वैसा ही सम शीतोष्ण बना रहता है। वहां रहने वाले साधु—सन्तों के लिए यह अद्भुत वरदान है।

तप्त कुण्ड में इतना गरम पानी और प्रह्लाद धारा में सामान्य कोसा पानी कहां से आता है, एक बार सरकार के भू सर्वेक्षण विभाग ने इसकी जांच के लिए खुदाई शुरू की थी। परन्तु अन्त में यह सोचकर खुदाई स्थगित कर दी कि ये दोनों धाराएं अचानक बन्द हो गईं तो अनर्थ हो जाएगा और इस तीर्थ के यात्रियों की सबसे बड़ी सुविधा समाप्त हो जाएगी। तप्त कुण्ड से कुछ नीचे नारद कुण्ड है। कहा जाता है कि बदरीनाथ में जो मूर्ति प्रतिष्ठित है वह आदि शंकराचार्य को उसी नारद कुण्ड से प्राप्त हुई थी। कुछ इतिहासविदों के अनुसार इस मन्दिर में पहले बोधिसत्व की मूर्ति थी और उसका नियंत्रण पश्चिमी तिब्बत में विद्यमान बौद्धों के प्रसिद्ध थोलिंग मठ से होता था। शंकराचार्य ने उस बौद्ध प्रभाव को समाप्त करने के लिए बोधिसत्व की मूर्ति के स्थान पर नारायणावतार विष्णु की और लक्ष्मी की मूर्ति स्थापित कर दी। मेरे मन में यह जिज्ञासा बनी रही कि शंकराचार्य स्वयं तो शैव थे, फिर उन्होंने शिव के बजाए विष्णु की प्रतिमा क्यों स्थापित की? शायद इसका समाधान भी वही हो, जिसका उल्लेख मैंने त्रियुगी नारायण की यात्रा के प्रसंग में किया है।

अलकनन्दा के बायीं ओर के तट पर, जिधर बदरीनाथ का मन्दिर है, सारी पुरानी बस्ती और बाजार भी उधर ही है। परन्तु अब अलकनन्दा का पुल पार करके जो नई बस्ती बस गई है उसमें धर्मशालाओं, भोजनालयों, दुकानों, भिखारियों और पुरोहितों की भीड़ है। एक तरह से नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली का सा

हिसाब है। हिमालय के दर्रों पर चौकसी रखने के लिए जब से इधर सैनिक छावनी बनी है, तब से अलकनन्दा के दूसरे तट पर चहल-पहल और बढ़ गई है।

बदरीनाथ से 2 किलोमीटर दूर माणा नामक गांव है जो इस सीमा पर भारत की अन्तिम बस्ती है। यहां एक चाय की दुकान पर दुकानदार ने बोर्ड पर लिख रखा है— 'भारत-तिब्बत सीमा पर चाय की अन्तिम दुकान।' पहले कभी इस गांव के निवासी भेड़ों पर सामान लादकर 17 हजार फुट की ऊंचाई के दुरारोह माणा दर्रे को पार करके व्यापार के लिए पश्चिमी तिब्बत जाया करते थे। यही रास्ता इधर से कैलाश मानसरोवर जाने का भी था। दूसरा रास्ता कैलाश मानसरोवर जाने का नीति दर्रे से था जो जोशीमठ से करीब 100 किलोमीटर और आगे है। अब से 45 वर्ष पहले कैलाश मानसरोवर की यात्रा करने के पश्चात् नीति दर्रे के रास्ते से ही हम भारत में प्रविष्ट हुए थे और वहीं से जोशीमठ आए थे। परन्तु अब इन दोनों दर्रों से कैलाश यात्रा का मार्ग बन्द है। पिछले वर्ष से चीन ने भारतीयों को कैलाश और मानसरोवर जाने की छूट दी है, परन्तु वह केवल अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ होकर लीपूलेख के दर्रे से ही है, अन्य दर्रों से नहीं। वैसे कैलाश मानसरोवर की यात्रा का सबसे आसान मार्ग भी वही है।

21 जून को वसुधारा की यात्रा के लिए मैं अकेला ही माणा ग्राम की ओर चल पड़ा। करीब घंटे भर में वहां पहुंच गया। वहां से वसुधारा 6 किलोमीटर दूर है। 15 हजार फुट की ऊंचाई पर 400 फुट की ऊंचाई से समानान्तर दो धाराएं एक साथ गिरती हैं। ऋषि दयानन्द वसुधारा गए थे और सम्भवतः माणा दर्रे से ही उन्होंने कैलाश मानसरोवर और तिब्बत की यात्रा की थी। मैं वसुधारा इसलिए भी जाना चाहता था कि मार्ग में उस स्थान का पता लगाना चाहता था जहां अलकनन्दा को पार करते हुए ऋषि बेहोश हो गए थे, बर्फ के नुकीले टुकड़ों से उनके पांव घायल हो गए थे, दो ग्रामीणों ने अचानक प्रकट होकर उनको बचाया था

और आग जलाकर ठंड के कारण बेहोश हुए उनके शरीर को गर्मी पहुंचाई थी। वसुधारा के पास ही अलकापुरी पर आरोहण करते हुए एक बार ऋषि ने हिम समाधि लेने की भी सोची थी परन्तु अन्त में अपना वह विचार छोड़ दिया था। इसी मार्ग पर आगे स्वर्गारोहण पर्वत पड़ता है, जहां पांडव अपने जीवन की संध्या बेला में राजपाट छोड़कर निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करते हुए वहीं कहीं हिम में बिलीन हो गए थे।

माणा ग्राम के पास ही कुछ ऊंचाई पर व्यास—गुहा है जिसमें बैठकर लोगों की मान्यता के अनुसार महर्षि व्यास ने महाभारत और पुराणों की रचना की थी। इस समय गुफा को एक कमरे का सा रूप दे दिया गया है, परन्तु उसका मूल रूप सुरक्षित है। एक तरफ सोने के लिए लम्बी शिला है। अन्दर की कोठरी रसोई घर का काम कर सकती है और बाहर बैठक में किसी स्टेनो को बुलाकर डिक्टेशन देने लायक जगह भी है। परन्तु यदि मुझे महर्षि व्यास के निवास की कल्पना करनी हो, तो मैं जहां से व्यास नदी निकलती है, देवताओं की घाटी कुल्लू और मनाली से ऊपर रोहतांग जोत के उस स्थान को अधिक महत्व दूंगा जो प्राकृतिक दृष्टि से कहीं अधिक चमत्कारपूर्ण है। मैं पहले तीन बार रोहतांग जोत हो आया हूं। परन्तु यह रहस्य गत वर्ष की यात्रा में ही खुला कि व्यास नदी किसी ग्लेशियर से नहीं निकलती, बल्कि 14 हजार फुट की ऊंचाई पर जोत की बाईं तरफ विद्यमान एक छोटे से कुण्ड से निकलती है, जिसकी लम्बाई चौड़ाई मुश्किल से 2 वर्ग फुट होगी और जिसका पानी भयंकर सर्दी में भी कभी नहीं जमता। रोहतांग जोत पर बर्फ इतनी घनी और हवा ऐसी चीरने वाली होती है कि उस स्थान को “मौत की घाटी” कहा जाता है। परन्तु जिस जगह से व्यास नदी निकलती है वहां चट्टानें कुछ इस प्रकार झुकी हुई हैं और उनकी रचना कुछ इस प्रकार की है कि उनकी ओट में न हवा का प्रकोप है न बर्फ का। महर्षि वेदव्यास के निवास की कल्पना व्यास नदी के उस उद्गम स्थान पर क्यों

न की जाए जिसका नाम ही 'व्यास ऋषि' आज तक चला आ रहा है।

माण्डा से कोई एक किलोमीटर आगे भीमपुल है जिसके नीचे से सरस्वती नदी गुजरती है। स्थान भयंकर भी है और मनोरम भी। कहते हैं कि स्वर्गारोहण की ओर जाते हुए पांचों पांडव तो सरस्वती की दुर्गम धारा को पार कर गए, पर द्रौपदी नहीं कर पाई, वह यहीं गिर पड़ी। हाल में ही पुल के पार एक छोटा सा द्रौपदी का मन्दिर बना है। यहीं सरस्वती अलकनन्दा से मिलती है। इसके बाद ऊपर चढ़ने पर अलकनन्दा एक के बाद एक आने वाले ग्लेशियरों में ऐसी छिप जाती है कि उसका फिर दर्शन केवल वसुधारा के पास ही हो पाता है। वसुधारा के पश्चात् अलकनन्दा को फिर चारों ओर से ग्लेशियर घेर लेते हैं और उसके बाद वह सर्वथा अदृश्य हो जाती है।

भीमपुल से दो किलोमीटर आगे चलने पर जो हिमाच्छादित पर्वत शिखर मार्ग के दाहिनी तरफ पड़ता है, मेरे पथ प्रदर्शक ने बताया कि यही कुबेर भण्डार है। मैंने पूछा— 'क्या इसी का नाम अलकापुरी है?' उसने कहा— "हां, आम बोलचाल में इसे कुबेर भण्डार कहते हैं और आप जैसे लोग इसी को अलकापुरी कहते हैं।" अच्छा! तो यह है अलकापुरी और इसी अलकापुरी पर आरोहण करते हुए ऋषि ने क्षण भर के लिए आत्महत्या की बात सोची थी। निःसंदेह कुबेर के इस खजाने पर चढ़ाई करने वाले को अपने प्राण हथेली पर रखकर ही चलना पड़ेगा। कुबेर के भण्डार में हिम के रूप में यह निरी चांदी ही तो भरी पड़ी है। सूर्यास्त और सूर्योदय के समय जब अरुण आभा की किरणें इस चांदी के भण्डार पर पड़ती हैं तो यही चांदी सोना बन जाती है। मन में आता है कि अपने देश के तस्करों से कहूं — अगर हिम्मत है तो आओ। खूब तस्करी करो। पर शर्त यही है कि प्राण हथेली पर रखकर आना पड़ेगा।

कदम—कदम पर दम लेते, हांफते—हांफते, जगह—जगह बर्फ में से गुजरते, बमुश्किल तमाम, किसी तरह वसुधारा पहुंचा। इतनी ऊंचाई से गिरने वाली इस धारा का काफी हिस्सा तो बीच में ही हिमकणों में परिवर्तित होकर हवा के वेग से उड़ जाता है और धारा का जितना हिस्सा नीचे गिरता है वह कितना नीचे पाताल तक पहुंचता है, यह खोजने की हिम्मत नहीं हुई। दायीं ओर यह वसुधारा थी और बायीं ओर नीचे तलहटी में अलकनन्दा ग्लेशियरों के बीच में से थोड़ी देर के लिए प्रकट हो रही थी। शायद इसी स्थान पर ऋषि दयानन्द ने अलकनन्दा को पार करके परले पार जाने की सोची हो। अगर यही वह स्थान हो, तो इस सुनसान भयंकर हिम—साम्राज्य में कोई बचाने वाला कहां से आएगा। तभी देखा कि दूर ग्लेशियर की ऊंचाई से दो व्यक्ति उतर रहे हैं। गाइड से पूछा : 'ये व्यक्ति घोर हिमानी में इतनी ऊंचाई पर क्या कर रहे हैं और कहां से आ रहे हैं?' उसने कहा : 'इस जगह ईंधन दुर्लभ है। पेड़ों की ओर झाड़ियों की जिन जड़ों को बर्फ जला देती है (हां बर्फ जलाती भी है) उन टूटों को इकट्ठा करने के लिए इनको इसी तरह कई—कई मील बर्फ पर भटकना पड़ता है।' तो मन में यह समाधान भी हो गया कि यदि ऋषि दयानन्द इस स्थान पर अलकनन्दा को पार करते हुए बेहोश हो गए हों तो उनको बचाने वाले इसी प्रकार के कोई ग्रामीण अचानक निकल आए होंगे।

वसुधारा की कठिन यात्रा के पश्चात् जब मैं एक बजे के करीब बदरीनाथ वापस पहुंचा तो थकावट के मारे बुरा हाल था, एकदम बद—हवासी। इतनी ऊंचाई का सफर करने के कारण कानों से सुनाई देना बन्द हो गया था। मेरे इस तरह गायब हो जाने के कारण सब लोग परेशान थे। पत्नी का क्या हाल था, यह क्या बताऊं? सकुशल लौटा देखकर उसकी जान में जान आई। बाकी सब ने भी राहत की सांस ली।

दो रातें बदरीनाथ में गुजारने के पश्चात् हम 22 जून को सबेरे बदरीनाथ से वापस चल पड़े।

पुनः जोशीमठ, रुद्रप्रयाग, देवप्रयाग और ऋषिकेश होते हुए हरिद्वार पहुंच गए। अगले दिन 24 तारीख की दोपहर को जब हरिद्वार से दिल्ली के लिए रवाना होने लगे तो मैंने एक बार हिमालय की ओर मुड़कर कहा “बूढ़े बाबा! नमस्ते!”

बूढ़े बाबा ने कान में कहा— “आवजो” (फिर आना)।

बस के चलते ही, वर्षा ने वैसे ही मंगलाचरण किया जैसे 9 जून को दिल्ली से रवाना होते समय किया था।

[समाप्त]

जोशीमठ से गोविन्द घाट	20 कि.मी.
गोविन्द घाट से फूलों की घाटी	19 कि.मी.
फूलों की घाटी से हेमकुण्ड	5 कि.मी.
बदरीनाथ से वसुधारा	8 कि.मी.
वसुधारा की ऊंचाई	15000 फुट